ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-1*JUNE-2014

सांख्यदर्शन में व्यक्तित्व की संकल्पना

ममता खरे
अध्यक्षा
मनोविज्ञान, विभाग
कानपुर विद्या मन्दिर महिला महाविद्यालय,

सारांश

सांख्य दर्शत वास्तव में मनोवैज्ञानिक दर्शन है। इसके आलोक में व्यक्तित्व को परखना गहरे सागर में निमज्जन करना है। हमारे चेतन और अचेतन अंश दोनों मिलकर व्यक्तित्व का गठन करते हैं, तो वाह्य परिवेश में अभिव्यक्त होता है और उसके द्वारा प्रभावित भी होता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव व्यक्तित्व उसकी क्षमताओं, स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा मान्यताओं का समूह है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न जाना जा सकता है। शरीर, मन, अहंकार और वातावरण के परिवर्तनों के बीच ऐसा कौन सा तत्व है जो स्थायी बना रहता है? सांख्य दर्शन के आलोक में इन प्रश्नों का समाधान सहजता से हो जाता है। सांख्य दर्शन द्वैतवादी है। व्यक्तित्व 'प्रकृति' तथा 'पुरुष' दोनों की अन्तःक्रिया का परिणाम है।

मुख्य शब्द : सांख्य, वैशेषिक, चित्तप्रकृति, पुरुष, प्रकृति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, त्रैगुण्य, प्रारब्ध, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, भोक्ता, बुद्धि, मन, इन्द्रिय।

प्रस्तावना

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन की चरम सीमा 'दर्शन' में विद्यमान है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ में सर्वप्रथम भारतीय दर्शन ने संसार में सर्वव्यापक परमतत्व का 'ब्रह्म' के रूप में अनुभव और साक्षात्कार किया। मनीषियों के आत्ममंथन से उद्भूत रहस्य ग्रन्थि सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त दार्शनिक ज्ञान ग्रन्थ है जिनमें कपिलमुनि प्रणीत सांख्यदर्शन शिरोमणि है। 'तस्मान्न बध्यते यद्वा न मुच्यते''[1] उद्घोषणा के साथ सांख्य जीवन्मुक्ति के कपाट खोलता है। सांख्य-दर्शन की प्रशंसा करते हुए डॉ0 उमेश मिश्र का कथन है–

''सांख्यदर्शन वास्तव में मनोवैज्ञानिक दर्शन है। इसके तत्व स्थूल नहीं है। वे हमारे बौद्धिक जगत् के तत्व हैं। इस जगत् में केवल सूक्ष्म तत्व ही है। उनके सम्बन्ध में विचार भी सूक्ष्म है।''[2]

आइजेंक के अनुसार (1952) ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्तप्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शारीरिक गठन का करीब–करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसमें अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।''

सांख्यदर्शन के आलोक में व्यक्तित्व को परखना गहरे सागर में निमज्जन करना है। व्यक्तित्व क्या है? हमारे चेतन और अचेतन अंश दोनों मिलकर व्यक्तित्व का गठन करते हैं, जो बाह्य परिवेश में अभिव्यक्त होता है और उसके द्वारा प्रभावित भी होता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मानव का व्यक्तित्व उसकी क्षमताओं स्वाभाविक प्रवृत्तियों तथा मान्यताओं का समूह है, जिसकेद्वारावहअन्यव्यक्तियों सेभिन्न जानाजा सकता है। मनोवैज्ञानिकों के इस कथन पर यह प्रश्न स्वाभाविक है''कौन सोंचता है, अनुभव करता है, इच्छा करता है और क्रिया करता है? शरीर, मन, अहंकार और वातावरण के परिवर्तनों के बीच कौन सा ऐसा तत्व है जो स्थायी बना रहता है।'' सांख्य दर्शन के आलोक में इन प्रश्नों का समाधान सहजता से हो जाता है।

सांख्यदर्शन द्वैतवादी दर्शन है। वह दो प्रमुख तत्त्वों को मानता है। (1) प्रकृति (जड़) (2) पुरुष (चेतन) इसके अनुसार 'मानव–व्यक्तित्व' 'प्रकृति' और 'पुरुष' दोनों की अन्तःक्रिया का परिणाम है [(3)] जबकि जीव अर्थात् आनुभाविक आत्मन् इन दोनों के मिलने से बनता है। प्रकृति को जड़ कहा गया है क्योंकि वह मूलतः जड़ पदार्थ है। जड़ होने के कारण 'प्रकृति' में चेतनाकाअभावपायाजाताहै।चेतनाका अभाव होने के बावजूद प्रकृति सक्रिय है। प्रकृतिमेंक्रियाशीलतानिरन्तरदिखाईपड़ती है।

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
साऽवयव परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम् ।।[4]

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ।।[5]

पुरुष चेतन है। इसे वेदान्त में 'आत्मा' कहा गया है। [6] सांख्य सिद्धान्त में व्यक्तित्व के त्रयोदश अंग बताये हैं। इनमें दश बाह्य अंग है अर्थात् –पांच प्रत्यक्षण के अंग हैं, पांच कार्य करने के अंग है तथा महत् अहंकार मन तीन आन्तरिक अंग है। प्रत्यक्षण के पांच अंगों को 'ज्ञानेन्द्रिय' तथा कार्य के पांच अंगों को 'कर्मेन्द्रिय' कहा जाता है।

बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसनत्वगारव्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ।।[7]

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वाह्य वस्तुओ का ज्ञान होता है तथा पाँच कर्मेन्द्रियों द्वारा व्यक्ति को इन उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने तथा समझने में विशेष मदद प्राप्त होती है। व्यक्ति के तीन आन्तरिक अंगों के नाम हैं बुद्धि, अहंकार और मन।[8] मन द्वारा चिन्तन का कार्य होता है[9] अहंकार से व्यक्ति में आत्मचेतना का नियन्त्रण होता है[10] तथा बुद्धि ज्ञानशक्ति का अंग होती है।[11] वाह्य अंग वस्तुओं के साथ सीधे सम्पर्क में आते है किन्तु आदेश आन्तरिक अंगों का होता है। वाह्य अंगों की प्रतिक्रिया के माध्यम से प्राप्त ज्ञान की 'मन' द्वारा जांच की जाती है, 'अहंकार' द्वारा उसके महत्व का निर्धारण किया जाता है तथा 'बुद्धि' द्वारा उसकी उपयोगिता की जांच की जाती है। इन मनोदैहिक अंगों के अतिरिक्त पाँच तन्मात्रायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तथा पांच महाभूत आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी मिलकर प्रकृति को पूर्णताः प्रदान करते हैं।[12]

बुद्धि 'पुरुष' एवं 'प्रकृति' के सूक्ष्म अन्तर का तो पता लगाती ही है साथ ही साथ इसमें सभी तरह की गत अनुभूतियों एवं स्मृति का संग्रह–गृह होता है।[13] इस तरह से यह कहा जा सकता है कि वाह्य ज्ञानेन्द्रिय व्यक्ति को अनिर्धाय आंकड़े प्रदान करती है। 'मन' उसे निर्धाय में बदल देता है[14] और 'बुद्धि' उसे निश्चित ज्ञान में बदल देती है।

सांख्य ने पुरुष के स्वरूप वर्णन के लिए जिन शब्दों का आश्रय लिया है, वे उसमें त्रैगुण्य, अविवेकित्व, क्रियाशीलता अचेतनता आदि समस्त विशेषताओं का निराकरण करते हैं।[15] वह एक शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, चेतन आत्मा है।[16] त्रिगुणभाव पुरुष में सुख–दुःख–आनन्द तथा मोह का भी निराकरण कर देता है। पुरुष न तो शरीर है और न नाशयुक्त बुद्धि, मन और इन्द्रिय है, वरन् वह अनित्यता से परे सर्वदा एकरूपेण स्थित प्रकाशरूप है उसके ज्ञान का प्रकाश प्रत्येक स्थिति में रहता है।[17]

पुरुष में कर्तृत्व का अभाव है। वह मात्र साक्षी है। प्रकृति के कार्यो का दृष्टा है। शरीर के नष्ट होने पर भी यह पुरुष (आत्मा) नष्ट नहीं होता।[18] जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र को त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार जीवात्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को धारण कर लेता है।[19] पुरुष चेतन, साक्षी, विवेकी, विषयी तथा असामान्य है। इसे बुद्धि के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से कोई नहीं देख सकता है।[20] इसका प्रमाण शब्द या आगम ही है।

'जीवात्मा' में स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीर होते हैं। स्थूल शरीर को व्यक्ति अपने माता–पिता से प्राप्त करता है।[21]तथा मृत्यु के पश्चात् वह समाप्त हो जाता है।

सूक्ष्म शरीर अपने चेतन अवस्था में दिन प्रतिदिन की क्रियाओं के रूप में कार्य करता है, परन्तु अपने गहरे अर्धचेतन रूप में, इसमें सिर्फ वर्तमान चेतन ही नहीं होता है बल्कि अनगनित गत अनुभूतियाँ भी संचित है। इसे 'संस्कार' कहा जाता है। संस्कार में संचित है तथा सूक्ष्म शरीर को एक जिन्दगी से दूसरी जिन्दगी में स्थानान्तरित करता रहता है।

इस प्रकार सांख्य योग के अनुसार व्यक्ति के प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण कर्मो के अनुसार ही नवीन शरीर प्राप्त होता है। प्रारब्ध कर्मानुसार व्यक्ति जन्म लेता है तथा विशिष्ट भोगों को भोगने के उपयुक्त शरीर को ही वह ग्रहण करता है। इस प्रकार से उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन पूर्व जन्मों से ही बहुत कुछ निर्धारित हो जाता हैं कर्मो के अनुरूप ही माता–पिता, शरीर की बनावट घर आदि प्राप्त होते हैं। क्रियमाण कर्मो में से कुछ प्रारब्ध कर्मो से मिश्रित होकर इसी जन्म में फल प्रदान करते हैं तथा कुछ क्रियमाण कर्म अनेक पूर्व जन्मों के संचित कर्मो में मिल जाते हैं। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का इच्छानुसार विकास कर सकता है। वह क्रियमाण कर्मो के द्वारा अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन ला सकता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व व्यक्ति के द्वारा ही अनन्त जन्मों के कर्मो के द्वारा परिवर्तित होता आ रहा है तथा इस परिवर्तन में वर्तमान समय के कर्मो का भी हाथ है।

सांख्य सिद्धान्त में व्यक्तित्व को समझने के लिए 'गुण' के सम्प्रत्यय को भी महत्वपूर्ण बतलाया गया है। 'गुण' प्रकृति की सत्ता का निर्धारण करते हैं। गुणों के अभाव में प्रकृति की कल्पना असम्भव हैं सांख्य में गुणों का वर्णन किया गया है जिनमें व्यक्ति की चित्त प्रकृति का निर्धारण होता है। ये तीन गुण निम्नांकित हैं–

सतोगुण

जिस व्यक्ति में सत्व गुण की प्रधानता होती है वह प्रखर बुद्धि का होता है तथा उसकी दृष्टि में स्पष्टता होती है। उसकी इच्छा तथा संवेग उसके नियन्त्रण में होता है। उसमें नैतिकता तथा अच्छाई का गुण होता है। उसका व्यवहार सम्पूर्ण समाज की भलाई के लिए होता है। [22]

रजोगुण

रजस् गुण से प्रभावित व्यक्तित्व अपनी इच्छाओं के प्रति लिप्तता अधिक दिखाता है। वह लालची एवं लोभी होता है। वह संवेग एवं आवेगों के प्रभाव में होता है। इन सब गुणों के कारण उसमें दुःख अधिक होता हैं उसमें उपलब्धि का स्तर प्रायः नीचा होता है। [23]

तमोगुण

तमस् अज्ञान का प्रतीक है जो ज्ञान का अवरोधक होता है। इस गुण की प्रधानता वाले व्यक्ति में सम्भ्रान्ति तथा व्यामोह अधिक होता है। ऐसे व्यक्तियों के

ध्यान में विचलन अधिक होता है। यह सत्वगुणों की क्रियाओं का विरोध करता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था, मध्ये तिष्ठन्ति राजसा :।
जघन्यगुणवृत्तिस्तथा अधो गच्छन्ति तामसाः।। [24]

सत्व, तमस् और रजस् गुण स्थिर गुण न होकर सतत् आपस में अन्तःक्रिया करते हुए परिवर्तनशील दिखते हैं। इनमेंसे कोई एक व्यक्तित्व में प्रबल हो सकता है और इस प्रबलता का परिणाम यह होता है कि उस व्यक्ति में विशेष तरह का व्यवहार तथा चरित्र का निर्माण होता है। यद्यपि मौलिक स्प से ये तीनों गुण एक दूसरे से अलग एवं भिन्न होते हैं। वे साथ अन्तःक्रिया करते हैं तथा व्यक्तित्व पर उनका प्रभाव अचेतन रूप से पड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता उसे श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाला मानती है जो तीनों गुणों से परे हैं। अर्थात् त्रिगुणातीत है। यह त्रिगुणातीत ही 'स्थितप्रज्ञ' व्यक्तित्व है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागमयः क्रोध : स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।[25]
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्चते ।।[26]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सतोगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणी इन त्रिविध गुणों से भिन्न त्रिगुणातीत व्यक्तित्व की चर्चा भारतीय मनोविज्ञान के चिन्तन का एक ऐसा महत्वपूर्ण महलू है, जो परिपक्व व्यक्ति की संकल्पना को उद्घाटित करती है।

कठोपनिषद एक रथ के दृष्टान्त के द्वारा मानव व्यक्तित्व का वर्णन करता है। 'आत्मा' रथ का स्वामी है। शरीर ही रथ है, बुद्धि सारथी है। मनस् लगाम है[27], जिससे कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण रूपी ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ आदि कमेन्द्रियाँ जुड़ी है। भोग्य विषयों रूपी पथ पर यह रथ चलता है। जो व्यक्ति आत्मा इन्द्रिय मन के साथ तादात्म्य का बोध करता है, उसे विषयों या कर्मफलों का भोक्ता कहा जाता है।[28]

यदि घोड़े प्रशिक्षित नहीं है, सारथी सोया हुआ है तो रथ अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। उसी प्रकार यदि इन्द्रियाँ नियन्त्रण में नहीं लायी गयी,, विवेक की शक्ति सोयी रह गयी, तो व्यक्ति मानव जीवन के लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। उसी प्रकार यदि बुद्धि जाग्रत है और मन तथा इन्द्रियाँ अनुशासित तथा संयमित है, तो व्यक्ति जीवन के लक्ष्य तक पहुंच सकता है और वही **'श्रेष्ठ व्यक्तित्व'** कहलाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में 'सांख्ययोग' सुख–दुख को समभाव से ग्रहण करने की शिक्षा देता है।[29] यह मनुष्य का मानसिक सन्तुलन बनाए रखता है। सोंच को सही मार्ग दिखाता है। इसमें मनुष्य को जीवन में तटस्थ भाव से निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त होती है। सांख्ययोग को 'सन्यास योग' भी कहा गया है, पर यह सन्यास आश्रम वाला सन्यास नहीं है बल्कि संसार में रहकर निष्काम कर्म करने से ही सन्यास का पालन हो सकता है। मनुष्य को देहाभिमान नहीं होना चाहिए। यह अहंभाव उत्पन्न करता है। इससे रहित मनुष्य चिन्ता व तनावरहित हो कर्म के प्रति समर्पित होता है। यह मनुष्य व समाज दोनों के लिए कल्याणकारी है। यही है आदर्श व्यक्तित्व की संकल्पना, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मूलमंत्र है।

दुर्लभ मानुष जनम है, देह न बारम्बार।
तरुवर ज्यों पत्ती झड़ै, बहुरि न लागै डार।।[30]

सन्दर्भ–सूची

1. सांख्यकारिका–व्याख्याता–डा0 कृष्णकांत त्रिपाठी, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर–कारिका 62
2. भारतीय दर्शन – डॉ0 उमेश मिश्र, पृ0 270
3. सांख्यकारिका – कारिका 60
4. वहीं – कारिका 10
5. वही – कारिका 11
6. (अ) न प्रकृति : न विकृति : पुरुषः' – सांख्यकारिका, कारिका–3
   (ब) वेदान्तसार – व्या0 डॉ0 कृष्णकान्त त्रिपाठी, सुभाषभण्डारमेरठ, पृ0 119, कारिका 135
7. सांख्यकारिका – कारिका 26
8. युगपच्चतुष्टयस्यतु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा। दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्ति :।। सांख्यकारिका – 30
9. 'उभयात्मकं मनः – सांख्यकारिका 27
10. सांख्यकारिका – कारिका 24
11. 'अध्यवसायो बुद्धि धर्मः'–सांख्यकारिका – 23 श्रीमद्भगवद्गीता–13/5'बुद्धिर्नाम निश्चयात्मिकान्तःकरण वृत्तिः'
13. वेदान्तसार –व्या0डा0 कृष्णकान्त त्रिपाठी–कारिका संख्या–64 सुभाष भण्डार, मेरठ
14. मनोनामसंकल्पविकल्पात्मिकान्तःकरणवृत्तिः'– वेदान्तसार – कारिका 66
15. जयमंगला – पृ0 25
16. सांख्य–सूत्र – 1/15, 1/19
17. वही – 5/116
18. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/20
19. वही – 2/22
20. सांख्यकारिका – कारिका सं0 17
21. वही – कारिका सं0 39
22. वही – कारिका सं0 12
23. वही – कारिका सं0 13
24. श्रीमद्भगवद्गीता – 14/18
25. वही – 2/56
26. वही – 14/25
27. कठोपनिषद – 1/3/3
28. कठोपनिषद् – 1/3/4
29. श्रीमद्भगवद्गीता – 2/48
30. दोहावली – कबीरदास